ज़िन्दगी का सिस्टम

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादनः नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

क़िस्त-2

अमीरुल मोमिनीन[अ०] की रवायत है कि रसूल[स०] ने फ़रमाया-

"अपनी औलाद को तैराकी और तीर चलाना सिखाओ।" यह वे चीज़ें है जो दुनिया की ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त का साधन है। यहाँ इन दोनों चीज़ों का बयान मिसाल की तरह है। "तीर के बजाय अगर किसी वक़्त में कोई इसका दूसरा रूप आ जाए (प्रचलित हो जाए) तो उसकी शिक्षा का निर्देश होगा। इसी तरह तैरने की तरह अगर नाव का रिवाज हो जाए तो नाव चलाना भी इसमें आ सकता है। यह चीज़ें दुनिया के लिए हैं और इस्लाम दुनियावी ज़िन्दगी के कसबल बढ़ाने के पक्ष में है। यहाँ इन सब चीज़ों को अजीब समझ लिया गया है या तक़्वा (संयम) और परहेज़गारी के ख़िलाफ मान लिया गया हैं यह सोच बिल्कुल ग़लत है। बच्चा जब इस सात बरस में अच्छे चाल-चलन और अच्छी बातों का आदी हो गया और ऐसी तालीम भी उसको दे दी गई जो उसकी दुनिया और आख़ेरत (परलोक) दोनों की भलाई के लिए ज़रूरी हैं तो अब वह वक़्त है कि उसको दुनिया की कठिनाइयों को हल करना Practically सिखाया जाए। अब बाप उसको ज़िन्दगी के एक सहायक की तरह अपने अच्छे कामों और कठिनाइयों के हल करने में साथ ले और उसके क़वाय अ़मल को पूरा करें।

इसको अमीरुल मोमेनीन[अ०] फ़रमाते हैं कि, "सात बरस तक बच्चे को आराम देना चाहिये फिर सात बरस तक उसके एख़लाक और आदतों का सुधार करना चाहिए, फिर सात बरस तक इससे काम लेना चाहिए।"

इसको रिसालत मआब[स०] ने बहुत ज़्यादा सटीक तरह फ़रमाया है, "बच्चा सात बरस तक बादशाह है यानी जो चाहे करे, कोई रोक-टोक नहीं, फिर सात बरस दास है, (इसलिए कि अभी उसमें इतनी समझ नहीं कि वह अच्छाई-बुराई समझ सके मगर ना चाहते हुए भी सिर्फ़ बाप के दबाव से वह उसके बताये हुए कामों को करेगा, यह उस तरह का कहना मानने पर मजबूर करना है, जैसे गुलाम अपने मालिक का कहना माना करते हैं) फिर उसके बाद सात बरस, यानी पंद्रह (15) से इक्कीस (21) साल तक, वह वज़ीर है, यानी उसमें अब खुद अक़्ल आ गई है। अब वह खुद समझ कर बाप का बोझ बंटा कर ज़िंदगी की मंज़िलों को तय करेगा। बादशाह के लिए वज़ीर ऐसा ही होता है।

ग़लत शिक्षा के दुख भरे नतीजे (रिज़ल्ट)

नुकसान देने वाले Germs से हिफ़ाज़त की ज़रूरत

बच्चों को शुरू ज़िंदगी से ही मारक विषाणुओं (Germs) से बचाय रखना बहुत ज़रूरी फर्ज़ है। यह देखा जाता है कि इधर बच्चे की उम्र आगे बढ़ी और ज़रा अक़्ल आयी तो उसे दीनियात की शिक्षा दिलाए बिना स्कूल या कालेज भेज दिया गया। वहां के टीचर जो अपने दिमाग़ में मज़हब के ख़िलाफ़ ख़याल लिए हुए होते हैं वह बच्चों पर शुरू से ही अपना असर डालते हैं। हो सकता है कि क़ानून की वजह से वह खुल्लम खुल्ला अपने विचारों के प्रचार का स्कूल के अन्दर हक़ न पायें मगर उनके दिली जज़्बों और दिमाग़ के ख़यालों का असर उनके काम और उनके बयान पर पड़ना ज़रूरी है। किसी मज़हबी हुक्म के सुनने पर दबी हुई मुस्कान, किसी

मज़हबी विश्वास के बयान में यह शब्द कि ''लोग ऐसा ख़याल करते है'' यह वह मामूली बातें हैं जो न जाने कितने स्टूडेन्ट्स (विद्यार्थियों) के ज़ेहन पर असर डालती हैं। फिर स्टूडेन्ट (विद्यार्थी) अपने शुरूआती दौर में अपने टीचरों को लगभग मासूम समझता है। वह उनकी हर बात को सर आँखों पर रखने के लिए तैयार रहता है। नतीजा यह होता है कि उसके दिमाग़ में मज़हब के ख़िलाफ़ विचार बैठ जाते हैं और वह समझता है कि ये सारे विश्वास और परम्परायें खुराफ़ात और अन्धविश्वास के अलावा कुछ नहीं है। अब अगर आप उसका मज़हबी सुधार करना भी चाहें तो नहीं होगी, इसलिए कि वह सुनने को तैयार ही नहीं होगा और सुनेगा भी तो इस ख़याल से कि यह बातें बिलकुल बकवास है इसलिए उस पर कोई असर नहीं होगा। याद रखना चाहिए कि अंग्रेज़ी शिक्षा पूरी तरह गुमराही की पूरी वजह नहीं है, बल्कि यह तरबियत का ग़लत तरीक़ा गुमराही की वजह है।

अगर मज़हब की बुनियादें मज़बूत हो गई होती तो बड़े-बड़े शक और ऐतराजों को वह सहन कर लेती मगर यहां तो मज़हब की बुनियाद ही मज़बूत नहीं है क्योंकि या तो मज़हबी मालूमात हैं ही नहीं या हैं तो सिर्फ़ लकीर के फ़क़ीर जैसी, इसलिए मामूली सा ऐतराज़ जो किसी वर्ग, फ़िरक़े से इसके कान में पहुंचता है तो इसके विश्वास को डांवा-डोल कर देता है।

मासूमों[अ०] के बयानों में इसकी तरफ़ इशारा मिलता है जबकि उस ज़माने में पश्चिमी शिक्षा (Western Education) नहीं थी, अंग्रेज़ी स्कूल नहीं थे, मगर दूसरी बहकाने वाली पार्टियाँ ऐसी थीं जिनको देखते हुए यह ज़ोर दिया गया है कि तुम अपनी शिक्षा बच्चों के ज़ेहन में बैठा दो कहीं ऐसा न हो कि दूसरों का असर इन पर पहले पड़ जाये और फिर इनमें सत्य को कुबूल करने की सलाहियत बाक़ी न रह जाये।

इमाम जाफ़रे सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं, ''अपने बच्चों को अपनी बात, परम्पराएं और विश्वास सिखाने में जल्दी करो इससे पहले कि दूसरे फ़िरक़े के तालीमात (शिक्षा) उनकी तरफ़ पहल करें।''

जनाब अमीर[अ०] का कहना है, ''अपने बच्चों को हमारे इल्म ज्ञान सिखाओ जिससे इनको फ़ायदा पहुँचे, कहीं ऐसा न हो कि मरजिया के विश्वास इनको दबा लें।''

अमीरुल मोमिनीन[अ०] ने अपने सुपुत्र इमाम हसन[अ०] के लिए जो वसीयत लिखी है वह ज़िन्दगी के सभी क्षेत्रों हिस्सों के लिए निर्देशों का एक घोल है, उसकी शुरुआत में हज़रत[अ०] ने हमें हमेशा वाला पाठ देते हुए यह फ़रमाया है जो ज़ाहिर में मुख़ातिब इमाम हसन[अ०] को किया गया है, मगर असल में इसमें सबके लिए एक आम शिक्षा का मक़सद है- फ़रमाते हैं, मैने कुछ वजहों से तुम तक इस वसीयत के पहुँचाने में जल्दी से काम लिया है, 'पहले तो यह कि कहीं मेरी ज़िन्दगी का वक़्त ख़त्म न हो जाए' मौत का कोई ठीक नही है।

इसके बाद फ़रमाते है, ''और यह कि कहीं तुम पर पहले ही कुछ ग़लत ख़्यालात और दुनिया के हंगामों का असर हावी न हो जाए जिससे तुम एक ढीट और भड़कने वाले घोड़े की तरह हो जाओ, छोटे बच्चे का दिल ख़ाली ज़मीन की तरह होता है, जो चीज़ उसमें बोई जाए उसको वह क़ुबूल कर लेता है लेहाज़ा मैने चाहा कि तुम्हें बता दूँ सिखा दूँ, इससे पहले कि तुम्हारा दिल ढीट हो और तुम्हारी अक़्ल दूसरी बातों में पड़ जाय।''

बेशक ऐसे बाप, चचा या दूसरे बुज़ुर्गों पर जितना भी एतराज़ हो कम है जो अपने से मुताल्लिक़ बच्चों को अजनबी गोद में और ज़हरीली हवा में बग़ैर किसी हिफ़ाज़त के भेज देते हैं। ये लोग बाद में ख़ुद पछतायेंगे, जब वह देखेंगे कि उन बच्चों के दिल में बड़े होने के बाद इनका कोई आदर सम्मान नहीं रहा। वह उन्हें बुद्धू समझने लगे, ओर उनका मज़ाक उड़ाने लगे। यह बातें कभी न होतीं अगर वह पहले ही उनको सही शिक्षा दे देते। बहुत मुमकिन है कि यह लड़के जब बड़े हों और उनकी अक़्ल जगे और उनकी आखें खुलें तो इन बुज़ुर्गों को दिल ही दिल में कोसें, कि उन्होंने हमारे साथ कोई सही बरताव नहीं अपनाया।

हदीस में है, ''रसूल[स०] ने फ़रमाया कि माँ-बाप अपनी औलाद के हक़ के लेहाज़ से उसी तरह आक़ होते हैं जिस तरह औलाद अपने माँ-बाप के हक़ पूरे न करने से।''

बात यह है कि ''आक़'' के मानी तो 'बेकहे' के हैं बाप का कहना मानना, आज्ञापालन ख़ुदा ने औलाद

पर वाजिब (अनिवार्य) किया है। इसलिए अगर वह उनके कहे पर न चले तो 'बेकहा' है। यह जो आमतौर पर कहा जाता है कि किसी बाप ने अपनी औलाद को आक़ कर दिया, इसके कोई मानी नहीं हैं, अगर वह बाप के कहने में नहीं है तो आक़ है चाहे यह बाप न कहे कि मैने आक़ कर दिया और अगर वह आज्ञाकारी है तो बाप लाख किसी के कहने सुनने से इसको आक़ करना चाहे वह आक़ नहीं होगा। फिर इसी तरह ख़ुदा ने औलाद की शिक्षा व तरबियत के जो कर्त्वय बाप के लिए रखे हैं अगर वह उनको पूरा न करे तो वह भी 'बेकहा'/'द्रोही' है, इसलिए वह भी ''आक़'' के मानी में आ जाता है।

सिखाने के ठीक और उचित उसूल

औलाद की तरबियत बड़ी मुश्किल और नाजुक चीज़ है। बरताव की छोटी-छोटी आम कमियाँ (अशलीलतायें) लड़कों के चाल-चलन के ख़राब होने की वजह बन सकती हैं।

इमाम मूसा काज़िम[अ०] फ़रमाते हैं, ''जब बच्चों से कोई वादा करो तो उसे पूरा करो।''

अगर माँ-बाप वादा करके उसे तोड़ते हैं तो बच्चों के दिमाग़ पर यह असर पड़ सकता है कि झूठ बोलना या वादा तोड़ना कोई बुरा काम नहीं है इसलिए वह अपनी आने वाली ज़िंदगी में इस जुर्म की कोई अहमियत नहीं समझेंगे। बेशक बाप की शिक्षा दीक्षा अपनी औलाद के लिए इतनी रूखी नहीं होनी चाहिये, जैसे एक कालेज का टीचर स्टूडेन्टस (विद्यार्थी) के लिए उसको उतने वक़्त में सिर्फ़ पढ़ा देने से मतलब होता है और कुछ नहीं। बच्चों को सिखाने में कड़ाई के साथ प्यार दया दिखाने की ज़रूरत है। शरीयत जो नेचुरल ज़िन्दगी बनाना चाहती है वह इसे ख़ास महत्व देती है। वह यह नहीं चाहती है कि आप अपनी औलाद के सामने त्योरियों पर बल डाले रहें और हमेशा उनसे डांट डपट ही कर बात करें, बल्कि कभी-कभी प्यार मुहब्बत को भी ज़ाहिर कीजिये और यह वह चीज़ है जिसमें अपने आपका दबदबा, गम्भीरता और शलीलता की भी हदें तजना पड़ती हैं। बच्चों को प्यार करना, नर्मी से काम लेना उनसे घुलना मिलना एक तरह की इबादत, पूजा, भक्ति है।

रसूलल्लाह[स०] की हदीस है, ''जो अपने बच्चे को प्यार करता है ख़ुदा एक पुण्य नेकी उसके खाते में लिख देता है'' रसूल[स०] से बढ़कर दुनिया में किसकी महिमा होगी मगर आप[स०] ख़ुद बच्चों के साथ जो तरीक़ा अपनाते थे उसके इतिहास व हदीस दोनो गवाह हैं। कुछ अहमूवादी (Egoistic) और घमंडी लोग उस वक़्त भी उस पर ऐतराज़ करते थे और बहुत से लोग उस समय भी दबी ज़बान से कहते हैं कि यह चीज़ें महानता के ख़िलाफ़ हैं मगर यह लोग 'स्वयं' की अज़मत (बलन्दी) का सही पैमाना नहीं जानते। हर चीज़ का एक वक़्त होता है और कभी मौक़ा होता है कि इंसान अपने से ख़ुद अपने बड़कपन से नीचे उतरे। बच्चों के सामने दबदबा और भारीपन बनाये रखना मानवता के उसूल के ख़िलाफ़ है।

रवायत में है कि, ''रसूल[स०] अपने दोनों नवासों इमाम हसन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] को प्यार कर रहे थे, अक़रा बिन हाबिस ने (ये नज्द के अमीरों में से था) कहा कि मेरे तो दस बेटे हैं, मैने कभी किसी को प्यार नहीं किया। हज़रत[स०] ने फ़रमाया कि जिसके दिल में शफ़क़त (बड़ों की ओर से छोटों के लिए प्यार और मोहब्बत) और मेहरबानी न हो वह ख़ुद मेहरबानी के क़ाबिल नहीं है।''

बच्चों के साथ ये तरीक़ा भी अपनाना ग़लत है कि शुरू से हर बात में उनको डराया जाय और दहशत दिलायी जाए। ''हव्वा'' ''जू-जू'' और ''बी शादी'' वग़ैरह के नामों से बिला वजह डराना बिल्कुल पालने सिखाने के उसूल के ख़िलाफ़ है। इसी तरह यह तरीक़ा कि बच्चों को सन्नाटे वाली जगह पर न जाने दिया जाये, मुर्दो से अलग हटाया जाए मुर्दों का चेहरा न देखने दिया जाए यह सब तरीक़े ग़लत हैं। ऐसे लोग अपने बच्चों को उनकी आने वाली जिंदगी में कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार नहीं करते बल्कि उनके अन्दर कमज़ोरी पैदा करते हैं । यह चीज़ अरब में नहीं थी। इसलिए हदीसों में इसका बयान नहीं मिलता बेशक (आपके) यहां के उलेमा और धर्म-नेताओं को इसका एहसास था। लेहाज़ा 'ताजुल उलेमा' ने लिखा है कि हमारे पिताश्री जनाब 'सुलतानुल उलेमा' (ताााबासराह) हमको बचपन से ख़ासतौर

पर मुर्दो की भयानक सूरतें देखने की आदत डलवाते थे लेहाज़ा किसी जगह कुछ डाकू मारे गए और उनके सर वहां से भेजे गए (क्योंकि उस ज़माने में फ़ौजदारी और दीवानी कचहरी सब 'सुल्तान उल उलेमा' के अधिकार में थी) तो वह सर एक दिन तक हमारे पलंग के पास रखे रहे, यह सब इसलिए था कि डर दिल से निकले और बच्चे में ऐसे दृश्यों के देखने से रोब और दहशत न पैदा हो।

इल्म ज्ञान पाने की अहमियत और इल्म की शरयी हदें

शिक्षा इंसान की ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी चीज़ है। और इस्लाम ने इल्म की अहमियत पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया है। इसी सिलसिले में ज़रूरत है कि इल्म की शरयी हदों को बयान कर दिया जाय। हदीस में है –

''इल्म का हासिल करना (जानना) हर मुसलमान का फ़र्ज़ है।'' इसमें हदीस के आख़िर में *''व मुस्लेमा''* का टुक्ड़ा भी लोगों की ज़बान पर चढ़ गया है और यह बिल्कुल अलग का है, असली हदीस में ये टुकड़ा नहीं है।

इसके साथ कुरान मजीद में है, ''वह जो लोग जानते हैं, और जो लोग नहीं जानते वे बराबर नहीं है।''

कुछ लोग इस तरह की आयतों व हदीसों को लेकर यह तर्क देते हैं कि इसमें किसी 'ख़ास' ज्ञान की क़ैद नहीं है। इसलिए हर ज्ञान का पाना शरीअत की चाह होगी, और इन्सान का मज़हबी फ़र्ज़ मान लिया जायेगा। क्या सचमुच यह दलील ठीक है?

ज्ञान के माने डिक्शनरी में 'जानने' ही के हैं लेकिन क्या हर चीज़ का जानना हर इन्सान के लिए अच्छाई की वजह बन सकता है? अगर ऐसा ही हो तो दुनिया में जानने वाले और अनजान में फ़र्क़ करना ही बेकार है, क्योंकि हर इंसान को अपने मैदान में कुछ ख़ास जानकारी होती है जो दूसरों को नहीं है। एक जंगल में रहने वाला फ़क़ीर जंगल की बहुत सी चीज़ों को जानता है जो बड़े फ़्लास्फ़रों को नहीं मालूम, और नदी में सफ़र करने वाला नाविक नदी और उसके टापुओं से जुड़ी हुई चीज़ों की बहुत सी जानकारी रखता है। एक किसान ज़मीन में बोने-जोतने के राज़ जानता है, लोहार लोहे की ख़ासियतों (विशेषताओं) और हालतों से जुड़ा ज्ञान रखता है और हर इंसान अपने बाप-दादा (पूवर्जों) और ख़ास अपने घर से जुड़ी बहुत सी बातों को जानता है जो किसी दूसरे को मालूम नहीं है। अगर यही जानना सिर्फ़ ज्ञान का पैमाना हो तो फिर जाहिल का अस्तित्व ही बाक़ी नहीं रहता। ऐसे में ये कहना कि आलिम और जाहिल बराबर नहीं हैं एक बेमतलब की बात है, क्योंकि यहाँ जाहिल की क़िस्म तो सिरे से पाई ही नहीं जाती।

मालूम होता है कि यहाँ आम और हर ज्ञान के बारे में बात नहीं हो रही है बल्कि इसके लिए परिभाषिक माने रखे गये है और यहाँ किसी ख़ास ज्ञान की बात हो रही है। अब हमको ज़रूरत है कि हम इस परिभाषिक माने को समझने की कोशिश करें या ज्ञान की ख़ास क़िस्म का पता लगाएं जो असली मक़सद है।

इसके लिए जब हम अक़्ल से काम लेते हैं तो मालूम होता है कि उस चीज़ का जानना इंसान के लिए तारीफ़ के लायक़ है जो काम की हो। लेकिन 'काम की' की क़िस्में हर इंसान के हिसाब से बदल जाती हैं। एक किसान उसी चीज़ का जानना समझेगा जो उसके क्षेत्र से जुड़ा है। एक डाक्टर उसे काम का समझेगा जो उसके मतलब की चीज़ है और चूंकि यहां नज़रिए के सही और ग़लत होने से बहस नहीं है इसलिए यह भी कहूं कि 'मुग़न्नी' गाने बजाने वाला उस चीज़ को काम का कहेगा जो उसके शौक़ से जुड़ा है। ज्ञान का मेयार (Lrj standard) यही है तो अब शरीयत में भी उसी चीज़ को ज्ञान कहा जाएगा जो शरीयत के नज़रिए से काम का हो।

अब देखिये कि शरियत का नज़रिया क्या है, इंसान के विश्वास और कर्म को पूरी तरह सँवारना लेकिन इस आरास्तगी सँवारने के दर्जे हैं। एक दर्जा वह है जो हर इंसान के लिए ज़रूरी है और उस से किसी को छूट नहीं है। इससे जुड़ा ज्ञान भी वाजिब (ज़रूरी) होना चाहिए और दूसरा दर्जा वह है जिस तक पहुंचना अच्छा है। इससे जुड़ा ज्ञान भी ऐसा ही होगा। और कुछ काम वह हैं जो खुद इंसान के लिए 'जायज़' की हद में हैं यानि न उस काम को करने की कोई ख़ास अहमियत (महत्व) और न उसके छोड़ने की, इनका इल्म भी उस हैसियत से जायज़ और मुबाह की हैसियत रखता होगा, यानि न वह वाजिब होगा और न मुस्तहब। **(जारी)**